

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अदृश्यलोक-प्रकरण

पर्यवेक्षणजश्चाद्य प्रवासस्तु हिमालये ।
चतुर्थं दिवसं प्राप्तः स्होन्वे मनीषिणाम् ॥ १ ॥
मण्डलं नव्यज्ञातव्य - प्राप्तौ प्रतिदिनं तु तत् ।
अगात्परममानन्दं जीवनोत्कर्षदायकम् ॥ २ ॥
अग्रिमे दिवसे यच्च प्राप्यते ज्ञानमुत्तमम् ।
प्रतीक्षा तस्य सर्वेषां हृदये तिष्ठति स्म सा ॥ ३ ॥
पूर्वं चतुरता हेतोर्ब्राह्मकालादपि प्रियात् ।
जाग्रति स्म समे प्रश्नान् कुर्वते लिखितान् बहून् ॥ ४ ॥
उपलब्धं भवेद्येन सर्वेषामग्रिमे दिने ।
समाधानं निजेज्ञाने वृद्धिः स्याद् विपुला च सा ॥ ५ ॥
टीका—हिमालय पर्यवेक्षण प्रवास का आज चौथा दिन था। रहस्यान्वेषी मनीषियों की मंडली नित नई जानकारीयाँ मिलने व जीवन में उत्कर्षता आने से बहुत प्रसन्न थी। अगले दिन जो जानने को मिलेगा उसकी प्रतीक्षा सभी के मन में रहती थी। सब लोग ब्रह्म मुहूर्त में पहले ही उठ बैठते और प्रश्नों की बड़ी संख्या एकत्रित कर लेते ताकि अगले दिन उनका समाधान उपलब्ध हो सके व अपने-अपने ज्ञान में विशाल वृद्धि हो सके ॥ १-५ ॥

समाप्ते पूर्व सन्ध्यादौ यथा पूर्वमिहाद्य च ।
विज्ञः स समुदायस्तु नेतृत्वे नारदस्य तु ॥ ६ ॥
पर्यवेक्षितुमत्रत्यां प्रकृतेः सम्पदं तथा ।
क्षेत्रगौरवजं जातो रहस्यं ज्ञातुमुत्सुकः ॥ ७ ॥
चर्मचक्षूषि पश्यन्ति वस्तुनो बाह्यमेव तु ।
स्वरूपं तस्य सत्ता सा महत्ता गरिमाऽपि च ॥ ८ ॥
उपयोगित्वमप्येतच्छक्यते ज्ञातुमुत्तमैः ।
सूक्ष्मेणैव नरैः सर्वैः पर्यवेक्षणकेन तु ॥ ९ ॥
अवलंबनमेतस्यास्तत्त्वदृष्टेश्च मंडलम् ।
स्वीचकाराथ ज्ञातं च सर्ववस्तुगतं रहः ॥ १० ॥
नारदः स्वयमेवात्र प्रारब्धां कृतवांस्ततः ।

चर्चा दिव्येन ज्ञानेन संपन्नः साधुसत्तमः ॥ ११ ॥

टीका—नित्य की भाँति संध्यावन्दन के उपरांत आज भी वह विज्ञ-समुदाय नारद जी के नेतृत्व में प्रकृति संपदा का पर्यवेक्षण करने के साथ-साथ इस क्षेत्र की गरिमा के रहस्य जानना चाह रहा था। चर्म-चक्षुओं से मात्र वस्तुओं के स्वरूप देखे जा सकते हैं, किंतु उसकी सत्ता, महत्ता, गरिमा एवं उपयोगिता समझनी हो तो सूक्ष्म पर्यवेक्षण की आवश्यकता होती है। मंडली को इसी तत्त्व दृष्टि का अवलंबन लेना पड़ रहा था। इसी से उन्होंने वस्तु मात्र के सारे रहस्यों को समझा। साधु-शिरोमणि दिव्यज्ञानी नारद जी ने अपनी ओर से चर्चा आरंभ करते हुए कहा ॥ ६-११ ॥

नारद उवाच—

दृश्यस्य जगतः पृष्ठभूमाविह तु वर्तते ।
अदृश्यं जगदत्यर्थं क्षमं चास्याप्यपेक्षया ॥ १२ ॥
जानन्तीदं च सर्वेऽपि प्राणादीनामभावतः ।
अवकरत्वं शवत्वं च शरीरं याति सुंदरम् ॥ १३ ॥
तुच्छं जानन्ति मृत्पिण्डं जनाः सर्वेऽपि केवलम् ।
परमाणोस्तु विस्फोटे सामर्थ्यं ज्ञायतेऽतुलम् ॥ १४ ॥
यद् व्याप्तमन्तरिक्षेऽत्रासीमिते तत्र केवलम् ।
दृश्यन्ते ग्रहनक्षत्रप्रभृतीन्येव मानवैः ॥ १५ ॥

टीका—नारद जी बोले दृश्य जगत के पीछे एक अदृश्य जगत है। परोक्ष की क्षमता तथा महत्ता प्रत्यक्ष की तुलना में कहीं अधिक है। दृश्य शरीर से, अदृश्य प्राण, आत्मा की सत्ता कितनी मूल्यवान् है। प्राण न रहने पर काया मात्र कचरा शव बनकर रह जाती है यह बात सभी जानते हैं। मिट्टी का ढेला तुच्छ है, किंतु उसके सब से छोटे अदृश्य घटक परमाणु की सामर्थ्य का पता विस्फोट होने पर ही चलता है। असीम अंतरिक्ष में जो भरा है, उसमें से ग्रह नक्षत्र जैसी कुछ ही वस्तुएँ दीखती हैं ॥ १२-१५ ॥

वायु सम्पत्तिरेषा या भ्रमति प्राणदायिनी ।

मूल्यमस्या भुवोऽपेक्ष्य मतं बह्वधिकं गुरु ॥ १६ ॥

प्रकृतेश्च प्रवाहस्य तापशब्दप्रकाशजाः ।
तरङ्गद्रष्टुमेते न नेत्रैर्योग्याः कदाचन ॥ १७ ॥
परं विश्वस्य सर्वस्य चेष्टाया उद्गमास्तु ते ।
मन्यन्ते समभूवंस्त आविष्काराः समेऽपि च ॥ १८ ॥
वैज्ञानिका, रहस्येषु प्रकृतेर्बोधितेषु हि ।
पूर्वाभासक्षमत्वं चाज्ञातज्ञाने क्षमोऽभवत् ॥ १९ ॥
क्षमता भौतिकक्षेत्रसंभवा विस्मयान्विताः ।

अध्यात्मपुरुषार्थेन लभ्या या सिद्ध्यस्तु ताः ॥ २० ॥
टीका—प्राणदायिनी वायुभूत संपदा इतनी मँडराती रहती हैं कि मूल्यांकन करने पर वह पृथ्वी की तुलना में असंख्यों गुना भारी तथा मूल्यवान सिद्ध होती हैं। प्रकृति प्रवाह के ताप, शब्द एवं प्रकाश की तरंगों नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होती, पर समस्त संसार की हलचलों का उद्गम उन्हीं को माना जाता है। उच्चस्तरीय वैज्ञानिक आविष्कार प्रकृति की रहस्यमयी क्षमताओं को जानने पर ही संभव हो सके हैं। अविज्ञात का पता लगाने में मनुष्य की पूर्वाभास क्षमता ने ही योगदान दिया है। भौतिक क्षेत्र की जिन चकित करने वाली क्षमताओं को अध्यात्म पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त किया जाता है, उन्हें सिद्धियाँ कहते हैं ॥ १६-२० ॥

चेतनायाश्च प्रत्यक्षं कार्यमत्र तु विद्यते ।
शरीरस्यानिवार्यत्वपूर्तिरिव ततश्च सा ॥ २१ ॥
मनइंद्रियजन्यानामाकांक्षाणां कृते सदा ।
यतते कर्तुमस्यैव चिन्तनस्य वशानुगा ॥ २२ ॥
परं बाह्याच्छरीराच्चेदंतर्द्रष्टुं क्षमं भवेत् ।
संभवेत्तर्हि ज्ञातुं यच्छरीरे ग्रंथिषु क्वचित् ॥ २३ ॥
विभिन्नेषु च चक्रेषु भाण्डागाराः सुपूरिताः ।
विद्यन्ते दिव्य शक्तीनां विश्वबीजस्य चास्य तु ॥ २४ ॥

टीका—चेतना का प्रत्यक्ष कार्य शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करना मात्र है। इंद्रियजन्य और मनोजन्य आकांक्षाओं के लिए ही वह चिंतक के चिंतनानुसार ताना-बाना बुनती रहती है। किंतु यदि बहिरंग कलेवर से भीतर झाँककर देखा जा सके तो प्रतीत होगा कि ब्रह्मांड वृक्ष के बीज स्वरूप मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में चंद ग्रंथियों एवं विभिन्न चक्रों के रूप में दिव्य शक्तियों के भंडार भरे पड़े हैं ॥ २१-२४ ॥

यथालब्धेस्तुतलेदृश्ये दृश्यतेऽवकरः परम् ।
मज्जद्भिर्गहने मय्यैः प्राप्यन्ते मणिसंपदः ॥ २५ ॥
तथा शरीरे मर्त्यस्य विपुलास्तु विभूतयः ।
एवं विधास्तु वर्तन्ते यासां भागेऽल्प एव तु ॥ २६ ॥
जाते हस्तगते सिद्धः पुरुषो मन्यते जनः ।
कार्यं तत्कुरुते यत्र सामान्यस्थितिसंभवम् ॥ २७ ॥

टीका—जिस प्रकार समुद्र की ऊपरी सतह में कूड़ा-करकट भर दीखता है, किंतु गहरी डुबकी लगानेपर मणिमुक्त

कों की बहुमूल्य संपदा हाथ लगती है, उसी प्रकार मानवी काया के अंतराल में ऐसी विभूतियाँ भरी पड़ी हैं, जिनका थोड़ा-सा भी भाग हस्तगत होने पर मनुष्य सिद्ध पुरुष माना जाने लगता है और वह ऐसे काम कर सकता है जो सामान्य स्थिति में मनुष्य के लिए कभी संभव नहीं हो पाते ॥ २५-२७ ॥

प्रकृतेस्तु रहस्यानां बोधेनात्र तथैव च ।
अज्ञातानां सुशक्तीनां प्राप्या हस्तगतानि तु ॥ २८ ॥
साफल्यानि च विज्ञान - संभवानि हि संपदः ।
उच्यन्ते पुरुषार्थेन नैवाह्यः केवलं नरः ॥ २९ ॥
प्रकृते रहस्ययुक्तानां शक्तीनां ज्ञातवानसौ ।
उपयोगं समृद्धीनां ततोऽधिष्ठातृतामगात् ॥ ३० ॥
एतासामुपलब्धौ च तस्याऽदृश्यस्य दर्शकः ।
विवेकः सहयोगित्वमगादत्र निरंतरम् ॥ ३१ ॥
जाग्रतं कर्तुमेतं च साफल्यं यो गतो यथा ।
भाग्यवान् स तथैवात्र जातो लोकेऽभिनन्दितः ॥ ३२ ॥

टीका—प्रकृति के रहस्यों को जानने और अविज्ञात शक्तियों को हस्तगत करने से मनुष्य को जो वैज्ञानिक सफलताएँ हस्तगत हुई हैं, उन्हीं को संपदा कहते हैं। मात्र पुरुषार्थ से ही मनुष्य सुसंपन्न नहीं बना है। मात्र पुरुषार्थ से ही मनुष्य सुसंपन्न नहीं बना है। उसने प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों का उपयोग जाना और तदनुसार चित्र-विचित्र समृद्धियों का अधिष्ठाता बना है। इन उपलब्धियों में उसकी अदृश्यदर्शी सूझबूझ ही सहायक रही है। इसे जागृत करने में जो जितना सफल हो सका, वह उतना ही भाग्यवान बना है व लोक में सम्मान प्राप्त कर पाया है ॥ २८-३२ ॥

स्थानान्यत्र हिमाद्रेः सोऽदर्शयन्तानि नारदः ।
येषु चैतन्य सिन्धुं तु मथित्वा मूल्यवन्ति च ॥ ३३ ॥
रत्नान्यादाय वासं स्वं स्वीचक्रुः सर्व एव च ।
वैज्ञानिका महान्तस्ते प्रकृतिशक्तिपारगाः ॥ ३४ ॥
तेषामेव प्रयासेन तानि सूक्ष्माणि भूतले ।
प्रथमं हस्तगान्यत्र जातान्यथ यदाश्रिता ॥ ३५ ॥
उपलब्धिरसामान्या पदार्थप्रकृत्योर्द्वयोः ।
क्षेत्रयोरुभयोर्ब्रह्म चैतन्यस्यापि सन्ततम् ॥ ३६ ॥

टीका—नारद जी ने हिमालय में स्थित ऐसे अनेकों स्थान दिखाए, जिनमें चेतना के महासमुद्र का मंथन कर के बहुमूल्य रत्न निकालने वाले प्रकृति शक्ति के पारखी महान वैज्ञानिकों का निवास रहा था। उनके प्रयास से वह सूत्र हस्तगत हुए थे, जिनके सहारे पदार्थ, प्रकृति और ब्रह्मचेतना के दोनों ही क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धि बन पड़ी ॥ ३३-३६ ॥

पर्यवेक्षणमेतत् प्रकृतेः सरलं तथा ।
तस्या रहस्ययुक्तानि सर्वाण्यावरणानि च ॥ ३७ ॥

६.१८ प्रज्ञोपनिषद्

बुद्धिमान् पुरुषस्तीक्ष्ण-विवेकस्य निजस्य तु ।
आधारेणाधिगच्छन्ति परं क्षेत्रं तु तन्महत् ॥ ३८ ॥
असीमितमनन्तं चागोचरं ह्यद्भुतं तथा ।
चेतनायास्तु ब्राह्म्या याऽवगाह्या प्रज्ञयैव तु ॥ ३९ ॥
अध्यात्मक्षेत्र - विज्ञान - पंडिता अवगाहनम् ।
कुर्वते त्रिविधानां तु क्षेत्राणां सन्ततं भृशम् ॥ ४० ॥
श्रद्धाप्रज्ञासुनिष्ठानां जायन्तेऽपि ततः समे ।
देवमानवगानां च भूतीनां निधयः स्वयम् ॥ ४१ ॥

टीका—प्रकृति का पर्यवेक्षण सरल है। उसकी रहस्यमयी परतों को बुद्धिमान व्यक्ति अपनी पैनी सूझ-बूझ के आधार पर प्राप्त कर लेते हैं, किंतु ब्राह्मी चेतना का क्षेत्र तो असीम, अनंत, अद्भुत एवं अगोचर हैं, उसका अवगाहन महाप्रज्ञा द्वारा ही संभव है। अध्यात्म विज्ञानी श्रद्धा प्रज्ञा और निष्ठा के त्रिविध क्षेत्रों का अवगाहन करते हैं और देवमानव स्तर के विभूतिवान बनते हैं ॥ ३७-४१ ॥

नारदोऽदर्शयद्विद्वदर्थानां स्तरगामिनाम् ।
ब्रह्मज्ञानां तु सिद्धानां स्थानान्यत्र निवासिनाम् ॥ ४२ ॥
कथं ते किमकार्षुश्च व्यधाद् व्याख्यामिमां स्फुटम् ।
अवोचच्च दिनेष्वेवं तेषु चात्मविदस्तु ते ॥ ४३ ॥
भूमेर्गौरवमस्यास्तु वर्द्धयन्ति स्म संततम् ।
सत्पात्रेभ्यो ददत्येव विद्यां तां लोकमंगलाम् ॥ ४४ ॥
निगमागमनान्नाऽथ योगतंत्रेति वा पुनः ।
रहोविभूतयस्त्वेताः प्रसिद्धानि महीतले ॥ ४५ ॥

टीका—नारद जी इस स्तर के दिव्यदर्शी ब्रह्मपरायण महासिद्धों के अनेक निवास स्थान दिखाए। उनमें किस प्रकार क्या किया, इसका विवरण सुनाया और कहा कि उन दिनों आत्मविज्ञानी इस भूमि की गरिमा को उस विद्या की शिक्षा देते थे। आगम और निगम योग और तंत्र इन्हीं रहस्यमयी विभूतियों के नाम हैं ॥ ४२-४५ ॥

संबोधयन् स जिज्ञासून् यथापूर्वं विवेचनम् ।
व्यधात्प्रारब्धमेवैतत्प्रकृतिज्ञान - बोधकम् ॥ ४६ ॥
प्रत्यक्षं जगादेषोऽत्र भूलोको दृश्य एव यः ।
इंद्रियग्राह्य एवं चानेके लोकास्तथापरे ॥ ४७ ॥
परलोका निगद्यन्ते वासा ये चाशरीरिणाम् ।
त्रिलोक्यन्तर्गताः सर्वे स्थूल दृष्टेरगोचराः ॥ ४८ ॥
जन्ममृत्योरन्तरे च तत्रात्मानो वसन्ति तु ।
तेषामेव विभागौ च नरकः स्वर्ग एव च ॥ ४९ ॥

टीका—जिज्ञासुओं को संबोधित करते हुए देवर्षि नारद ने प्रकृति ज्ञान के बोधक अपने विवेचन को जारी रखते हुए फिर कहा। प्रत्यक्ष जगत भूलोक है। यह दृश्यमान और इंद्रियगम्य है। ऐसे ही अन्य अनेक लोक हैं जिन्हें परलोक कहते हैं। इसमें अशरीरी आत्माओं का निवास है। ये त्रिलोकी

के अंदर ही है जो स्थूल दृष्टि से आग्राह्य है। जन्म और मरण के मध्यांतर में आत्माएँ इन्हीं में से किसी में रहती हैं। स्वर्ग-नरक उन्हीं के विभाजन हैं। ४६-४९ ॥

आत्मानः केचनात्रैव भाविकार्यविधेरथ ।
निर्धारण - प्रतीक्षायां विश्रमन्ति निरंतरम् ॥ ५० ॥
परिकरत्वे विशिष्टे च नियन्तुः सन्ति केचन ।
प्रयोजनेभ्य एवाति विशिष्टेभ्यः सुरक्षिताः ॥ ५१ ॥
जीवन्मुक्ता इमे सर्वेऽप्युच्यन्ते देववर्गगाः ।
आत्मानः सृष्टि-संस्थायामदृश्याः सन्ति संरताः ॥ ५२ ॥
सत्पात्राण्यभियान्येते साहाय्यार्थमयाचिताः ।
दुष्टतां च पराजेतुं तेषां योगस्तु विद्यते ॥ ५३ ॥
शरीरिणामिवैतेषां कार्याण्यत्राशरीरिणाम् ।
भवन्ति सत्ता सूक्ष्मा च सामान्यानामपेक्षया ॥ ५४ ॥
नृणामधिकसामर्थ्यमुक्ता सा द्रुतगामिनी ।
व्यापिकाऽस्ति लभन्ते च नरा एभिः सहायताम् ॥ ५५ ॥
पूर्वाभासमनेके च लभन्ते च नरा इह ।
मुच्यन्ते संकटेभ्यश्च तथोत्कर्षं भजन्त्यपि ॥ ५६ ॥

टीका—कुछ आत्माएँ भावी कार्य निर्धारण की प्रतीक्षा में विश्राम करती रहती हैं। कुछ नियंता के विशिष्ट परिकर में विशिष्ट प्रयोजनों के लिए सुरक्षित रहती हैं, इन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं। देवता वर्ग की आत्माएँ सृष्टि के सुसंचालन में अदृश्य रूप से संलग्न रहती हैं। सत्पात्रों के पास अयाचित सहायता के लिए दौड़ जाती हैं। दुष्टता को परास्त करने में भी उनका योगदान रहता है। अशरीरी होते हुए भी इनके क्रियाकलाप शरीरधारियों जैसे होते हैं। इनकी सूक्ष्म सत्ता सामान्य मनुष्यों की पात्रता के अनुरूप उनका अविज्ञात सहयोग मिलता रहता है। कितनों को ही वे ऐसे पूर्वाभास कराती हैं, जिससे संकट से बचा जा सके और उत्कर्ष का अप्रत्याशित सुयोग मिल सके ॥ ५०-५६ ॥

भूलोकेन सम्बद्धं प्रकृतेरेकमस्ति तत् ।
प्रतिविश्वं च लोकाद् यद् विपरीतं हि विद्यते ॥ ५७ ॥
प्रतिगामिभिरेवादः पदार्थैरिव संभृतम् ।
द्वयोः समन्वयेनैव सृष्टिसन्तुलनं स्थितम् ॥ ५८ ॥
छिद्रमस्यां व्यवस्थायां यदि सञ्जायते क्वचित् ।
भवेद् विपर्ययः कोऽपि प्रलयो वा लघुर्महान् ॥ ५९ ॥
ईदृश्यः स्थितयः प्रायो जायन्ते मानवैर्यदि ।
गृह्यन्तेऽभीप्सिता लोके विधयः प्राणिकष्टदा ॥ ६० ॥

टीका—इस भूलोक से सटा हुआ एक विपरीत प्रकृति का प्रतिविश्व भी है। उसमें प्रति पदार्थ भरा है। दोनों के समन्वय से सृष्टि संतुलन बना है। यदि इस व्यवस्था में कहीं छिद्र पड़ जाए या विपर्यय चल पड़े तो फिर समझना चाहिए कि महाप्रलय या खंड प्रलय जैसा संकट आ खड़ा होगा।

ऐसी विपत्ति भरी परिस्थितियाँ मनुष्यों द्वारा अपनाई गई अवांछनीय प्राणिमात्र विरोधी गतिविधियों द्वारा उत्पन्न होती हैं ॥ ५७-६० ॥

महत्त्वं सम्पदः सर्वे जानन्त्येव नरास्तथा।
वपुःशक्तिं बुद्धिशक्तिं शस्त्रशक्तिं तथैव च ॥ ६१ ॥
संघशक्तिं विजानन्ति मानवाः सर्व एव च।
आत्मशक्तिस्तु सर्वेभ्यः श्रेष्ठा प्रोक्ता बुधैरिह ॥ ६२ ॥
तयाधिपत्यं लोकेऽस्मिन् प्रकृतौ कर्तुमञ्जसा।
संभवेच्चेतनस्यात्र स्तर एतादृशश्च सः ॥ ६३ ॥
परिष्कृतो विधातुं च संभवोऽस्ति यतः स्वयम्।
स हि स्रष्टेव स्यात्सर्वशक्तिमानात्मभूर्विभुः ॥ ६४ ॥
प्रसुप्तं जाग्रतं कर्तुं विधिर्यः साधनाऽस्ति सा।
मानवो निर्मितः स्रष्टा युवराजो निजो महान् ॥ ६५ ॥
दायित्वं तच्च निर्वोढुं शक्तिस्तु विपुलाऽपि सा।
बीजरूपे प्रदत्ता यां कुर्यात्सुफलतां नरः ॥ ६६ ॥

टीका—संपदा का महत्व सभी जानते हैं। शरीर बल, बुद्धि बल, शस्त्र-बल, संघ-बल आदि से भी सब परिचित हैं। इन सबसे बड़ा आत्मबल है। उसके द्वारा प्रकृति पर आधिपत्य पाया जा सकता है और चेतना को इस स्तर तक परिष्कृत किया जा सकता है कि वह स्रष्टा की भाँति सर्वशक्ति मान स्वयंभू बन सके। प्रसुप्त को जागृत करने की विधा को ही साधना कहते हैं। मनुष्य को स्रष्टा ने अपना महान उत्तराधिकारी युवराज बनाया है और उस उत्तरदायित्व का भली प्रकार निर्वाह कर सकने जैसा शक्ति भंडार उसे बीज रूप में प्रदान किया है। उसे अंकुरित और फलित करना मनुष्य का काम है ॥ ६१-६६ ॥

सीमितं दृश्यपर्यन्तं यत्तत्तुच्छं तु वर्तते।
अदृश्यविस्तरं यस्तु वैभवं ज्ञातवानुत ॥ ६७ ॥
प्रविष्टस्तत्र तस्माच्च भांडागाराद्गृहीतवान्।
किञ्चित्स ज्ञायतां जातो महानैवात्र संशयः ॥ ६८ ॥
महत्ता प्राप्तये दृष्टिरुदात्ता हृदयं महत्।
विश्वासः साहसं गन्तुमपेक्ष्यन्तेऽपि चैकतः ॥ ६९ ॥
महामानवसंज्ञानां चिन्तनं चरितं महत्।
तथैव व्यवहारश्च निर्धारणमथापि वा ॥ ७० ॥
तत्स्तरं स्पृशति प्रोच्यं महत्तायां तु न्यक्कृतम्।
सम्पन्नत्वं भवेदेव श्रेष्ठा सा भुवि सर्वतः ॥ ७१ ॥

टीका—जो दृश्य तक सीमित है वह तुच्छ है। जिसने अदृश्य का विस्तार वैभव समझा, उस क्षेत्र में प्रवेश किया, उस भंडार में से कुछ समेटा-बटोरा, समझना चाहिए वह महान बन गया। महानता की प्राप्ति के लिए उदात्त दृष्टिकोण, विशाल हृदय और एकाकी चल पड़ने योग्य साहस तथा विश्वास चाहिए। महामानवों का चिंतन, चरित्र, व्यवहार,

रुझान, निर्धारण इसी स्तर का होता है। महानता पर संपन्नता को न्योछावर किया जा सकता है। महानता सर्वश्रेष्ठ है ॥ ६७-७१ ॥

आदौ शब्दः समुत्पन्नः सृष्टेरस्या महानयम्।
ततस्तयोश्च संहत्या लोके ताप - प्रकाशयोः ॥ ७२ ॥
शक्तिस्त्रोतांसि जातानि विविधानि ततोऽभितः।
पञ्चप्राणादयः पञ्चतत्त्वान्युत्पन्ना ययुः ॥ ७३ ॥
सृष्टिरेषा समुत्पन्ना तेषां योगेन विस्तृता।
मूलं प्रकृतेः शब्दोऽस्ति य ओंकार इहोदितः ॥ ७४ ॥
स्रष्टुरिच्छानुसारं च बहुधा भवितुः स्वतः।
ध्वनिप्रवाहरूपेऽग्रे वैखरीं समुपागतः ॥ ७५ ॥
नादशब्दौ बुधा यच्च ब्रह्मलोके वदन्ति ते।
सर्वोपरि च सामर्थ्यमेतस्यास्ति महत्त्वगम् ॥ ७६ ॥

टीका—सृष्टि के आदि में शब्द उत्पन्न हुआ। उससे ताप और प्रकाश की संहति से शक्ति के कितने ही स्रोत उमड़े और पाँच प्राण तथा पंचतत्त्व विनिर्मित हुए। समस्त सृष्टि उन्हीं के सहयोग-समन्वय से उत्पन्न हुई है। प्रकृति का मूल शब्द है। स्रष्टा की इच्छा शक्ति जब एक से बहुत बनने के लिए अग्रसर हुई तो सर्वप्रथम उसका प्रकटीकरण ओंकार शब्द के ध्वनि-प्रवाह में बैखरी रूप से परिलक्षित हुआ। यह शब्द ही नाद ब्रह्म और शब्द ब्रह्म है। उसकी सामर्थ्य सर्वोपरि है ॥ ७२-७६ ॥

जीविताः प्राणिनस्तस्य सहयोगेन भावनाः।
स्वकीया व्यञ्जयन्त्यत्र सहयोगस्य संततम् ॥ ७७ ॥
मार्गं प्रशस्तं कुर्वन्ति दानादानगतं तथा।
व्यष्टेरथ समष्टेश्च गतौ वा प्रगतावपि ॥ ७८ ॥
शब्दस्य योगदानं तदति सर्वं हि मन्यते।
ज्ञानविज्ञानयोस्तारतम्यं चलति तच्छ्रुतम् ॥ ७९ ॥
टीका—जीवित प्राणी इसी के आधार पर अपनी भावनाएँ व्यक्त करते और सहयोग का आदान-प्रदान का पथ प्रशस्त करते हैं। समष्टि और व्यष्टि की सामान्य गति और विशेष प्रगति में शब्द का योगदान सर्वोपरि माना जाता है। ज्ञान और विज्ञान का तारतम्य उसी के सहारे चल रहा है ॥ ७७-७९ ॥

ऋषयो नादब्रह्माथ शब्दब्रह्माप्युपास्य वा।
विभूतीरर्जयामासुरध्यात्म - क्षेत्रजा भृशाः ॥ ८० ॥
सामर्थ्यमिदमाश्रित्य विश्वकल्याणं तथा।
आत्मकल्याणं चेमे प्रशस्तां पद्धतिं व्यधुः ॥ ८१ ॥
ज्ञानचर्चा विधावत्र सत्संगेऽथ प्रशिक्षणे।
उच्चारणं यदस्त्येतच्छब्द - ब्रह्मोदमुच्यते ॥ ८२ ॥
नामरूपाश्रितं ध्यानं क्रियते स्वरतालगः।
ध्वनिप्रवाह एवात्र नादयोगोऽभिधीयते ॥ ८३ ॥
उपयुज्जत एनं च विकासेऽन्तर्गते बुधाः।

६.२० प्रज्ञोपनिषद्

तत्त्वदर्शिन आत्मज्ञाः प्रकृतिज्ञान पारगाः ॥ ८४ ॥

टीका—ऋषियों ने शब्द-ब्रह्म और नाद-ब्रह्म की उपासना से अध्यात्म क्षेत्र की अनेकानेक विभूतियाँ अर्जित की। उस सामर्थ्य के सहारे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण का पथ-प्रशस्त किया। ज्ञान-चर्चा सत्संग और प्रशिक्षण की विधा में उच्चारण का प्रयोग होता है। यह शब्द-ब्रह्म है। ध्यान में नाम, रूप का आश्रय लिया जाता है। स्वरताल-बद्ध ध्वनि प्रवाह को नादयोग कहते हैं। आंतरिक विकास में उसका उपयोग प्रकृति विज्ञान के पारखी आत्मज्ञ तत्त्वदर्शी किया करते हैं ॥ ८०-८४ ॥

टीका—ऋषियों ने शब्द-ब्रह्म और नाद-ब्रह्म की उपासना से अध्यात्म क्षेत्र की अनेकानेक विभूतियाँ अर्जित की। उस सामर्थ्य के सहारे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण का पथ-प्रशस्त किया। ज्ञान-चर्चा सत्संग और प्रशिक्षण की विधा में उच्चारण का प्रयोग होता है। यह शब्द-ब्रह्म है। ध्यान में नाम, रूप का आश्रय लिया जाता है। स्वरताल बद्ध ध्वनि प्रवाह को नादयोग कहते हैं। आंतरिक विकास में उसका प्रकृति विज्ञान के पारखी आत्मज्ञ तत्त्वदर्शी करते हैं ॥ ८०-८४ ॥

परिष्कृतेन चित्तेन चरित्रेणाथ मानवाः ।

परिष्कृताभ्यामाहार - विहाराभ्यां च सर्वदा ॥ ८५ ॥

पाठेनाथ जपेनापि स्वर - साधनया पुनः ।

कुर्वते मंत्रसिद्धिं च विश्वकल्याण - कारिकाम् ॥ ८६ ॥

अस्त्यसाधारण - शक्तिर्मन्त्रे यस्य प्रभावतः ।

स्थितिर्वातावृत्तिर्व्यक्तिः परिवर्तन्त एव तु ॥ ८७ ॥

मंत्रसिद्धिरथैषा च वाक्सिद्धिर्नापरामता ।

भौतिकाध्यात्मकार्याणि यया सिद्ध्यन्ति चाञ्जसा ॥ ८८ ॥

टीका—परिष्कृत अंतःकरण परिष्कृत चरित्र और परिष्कृत आहार-विहार वाले मनुष्य जप, पाठ और स्वर साधना द्वारा विश्वकल्याण कारक मंत्र सिद्धि करते हैं। मंत्र में असाधारण शक्ति है। उसके प्रभाव से व्यक्ति, परिस्थिति और वातावरण को बदला जाता है। वाक् सिद्धि और मंत्र सिद्धि एक ही बात है। उससे भौतिक और आत्मिक दोनों ही क्षेत्रों के अनेकानेक प्रयोजन सिद्ध होते हैं ॥ ८५-८८ ॥

वाचः सिद्धिः कृता यैस्तु शापैरथ वरैर्निजैः ।

तैः समर्थं विधातुं तद्धर्मं दूरयितुं तथा ॥ ८९ ॥

अधर्म भूमिका दिव्या निरूढा संयतात्मभिः ।

मंत्रशक्त्युपयोगोऽस्ति धर्मकृत्येषु स महान् ॥ ९० ॥

तस्मादेव च हेतोस्तु फलन्त्येतानि पूर्णतः ।

अन्यथा यज्ञपूजादिस्तुतयः सामगीतयः ॥ ९१ ॥

नैव महत्त्वमायान्ति यथोक्तं तु पदे पदे ।

मन्त्रे महत्ता या गीता शब्दोच्चारणजा बुधैः ॥ ९२ ॥

विधिश्चिता ततो वक्तुर्व्यक्तित्वस्याधिका मता ।

साधकैः संयमोऽपेक्ष्यः कर्मकांड - गतैरपि ॥ ९३ ॥

सीमितं सुविचार्यैव वक्तुमभ्यास इष्यते ।

आहारसंयमश्चास्य कृते प्रोक्तोऽनिवार्यतः ॥ ९४ ॥

संयतस्य च वागेषा रामबाण इव स्वतः ।

लक्ष्यं विध्यति यन्त्रेभ्योऽधिका शक्तिश्च मंत्रजा ॥ ९५ ॥

ऋषिष्वनेके निष्णाता मंत्रविद्या विधाविह ।

साधनायाः स्थलान्येष दर्शयामास मंडलम् ॥ ९६ ॥

टीका—जिनने वाणी सिद्ध की थी, आत्मसंयमी उनने अपने शाप वरदान से धर्म को समर्थ बनाने और अधर्म को निरस्त करने की महती भूमिका संपन्न की। धर्मानुष्ठानों में मंत्र शक्ति का असाधारण उपयोग है। उन्हीं के कारण वे फलित होते हैं अन्यथा यज्ञ, पूजा-उपचार, स्तवन, सामगान आदि का वैसा महत्त्व नहीं रहता जैसा कि बताया गया है। मंत्र में विधिवत शब्दोच्चार की जितनी महत्ता है उससे भी अधिक उच्चारणकर्ता के व्यक्तित्व की है। मंत्र साधक को मंत्र साधना के लिए उच्चारणपरक कर्मकांडों की तरह वाक् संयम भी अपनाना होता है। वचन सीमित और सोच-समझकर बोलने का अभ्यास करना होता है। इस प्रयोजन के लिए आहार संयम नितांत आवश्यक है। संयमी की वाणी ही रामबाण की तरह लक्ष्य वेधती है। यंत्रों से भी बड़ी शक्ति मंत्रों में मानी गई है। ऋषियों में से अनेक मंत्र विद्या के निष्णात थे। उनके अनेकों साधना स्थल इस मंडली को नारद जी ने दिखाए ॥ ८९-९६ ॥

ऊर्ध्वमहामर्त्याः कियन्तो जगतश्च किम् ।

हितमेभिः कृतं लोकेऽनुसंधानैरुपार्जनैः ॥ ९७ ॥

इति विस्तरशः प्रोक्तं नारदेन महर्षिणा ।

यतः स पूर्वमेभिस्तु संगतोऽनेकशो मुनिः ॥ ९८ ॥

शृण्वन्तः सर्व एवात्र मंडलस्था व्यचारयन् ।

परंपराः पुराणास्ता नव्यकालानुरूपतः ॥ ९९ ॥

नवीनेन प्रकारेण कर्तुं सर्वाश्च जीविताः ।

पुरुषार्थस्तथाऽस्माभिः कार्य आर्षो यथा ह्यभूत् ॥ १०० ॥

स्वयं धन्यास्तु ते जाता गौरवं च हिमालयः ।

देवात्मनो गतस्तेषां कृपया गौरवेण च ॥ १०१ ॥

टीका—हिमालय के क्षेत्र में कितने महामानवों ने निवास किया और उनके अनुसंधानों उपार्जनो ने संसार का क्या क्या हित साधन किया इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया, चूँकि वह उनसे अनेक बार पहले मिले थे। श्रवण करते हुए उस यात्रा मंडली में से प्रत्येक ने सोचा उन पुरातन परंपराओं को नए समय के अनुरूप नए सिरे से जीवंत करने के लिए हमें वैसा ही पुरुषार्थ करना चाहिए जैसा कि पुरातन काल के ऋषियों ने किया। वे स्वयं धन्य हुए और हिमालय को देवात्मा

प्रज्ञोपनिषद् ६.२१

कहे जाने का गौरव दिलाया ॥ ९७-१०१ ॥
यात्रा पूर्णा यथापूर्वमद्य सोत्साहमुत्तमा ।
अतिवाहयितुं रात्रियोग्यमन्वेषितं स्थलम् ॥ १०२ ॥
कंदमूलानि मार्गेषु यान्याप्तानि मुनीश्वरैः ।
खादित्वा कृतसन्ध्यैश्च शयितं सुखपूर्वकम् ॥ १०३ ॥

टीका—आज भी कल की ही तरह यात्रा अतीव उत्साह के साथ पूर्ण हुई । रात्रि बिताने के लिए उपयुक्त स्थान खोज निकाला गया । रास्ते में जहाँ-तहाँ से कंदमूल लोग समेटते गए थे । संध्या-वंदन कर के उसी से पेट भरे और संतोषपूर्वक शयन किया ॥ १०२-१०३ ॥

॥ इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि देवसंस्कृतिखंडे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः,
अदृश्यलोक - प्रकरण इति प्रकरणो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥